यकीनन, समाधान है साहस

प्रफुल्ल कोलख्यान

सामान्य रूप से असहिष्णुता, हिंसा, शोषण, अपराध, क्रूरता और पर-पीड़कता का प्रसार बहुत तेजी से हो रहा है। इसका सबसे बुरा असर महिलाओं की स्थिति पर हो रहा है। महिलाओं पर स्त्री होने के कारण शारीरिक और मानसिक अत्याचार और अनाचार की भारी बढ़त ने सभी को सकते में डाल दिया है। घर, परिवार, हाट, बाजार, सड़क, दफ्तर, खेत, कारखाना, विमान, रेल, बस, कार, अस्पताल, स्कूल, शहर, गाँव, जंगल, पहाड़ कोई जगह निरापद नहीं है, बूढ़ी, जवान, बच्ची, विकलांग, गरीब, अमीर, शिक्षित, अशिक्षित कोई नहीं खतरे से बाहर है। इस पर कैसे काबू पाया जाये? इसके कारणों को कैसे ठीक-ठीक पकड़ा जाये? इस तरह के वातावरण बन जाने का जीवन के अन्य क्षेत्र, रोजी-रोजगार, खेल-कूद, भ्रमण-पर्यटन, इश्क-मुहब्बत, सामान्य अंतर्वैयक्तिक संबंधों, हास-विलास, सामान्य भावनात्मक आदान-प्रदान, विश्वास की पारस्परिकता, व्यक्तित्व विकास पर पड़नेवाले असर को कैसे समझा जाये? बलात्कार के कितने तो रूप हैं, भाषिक बलात्कार, संवेगात्मक बलात्कार, निरुद्धात्मक बलात्कार, प्रतिशोधात्मक बलात्कार, लोभ-लालच के जाल में फँसाकर हासिल सहमति के हवाले से बलात्कार आदि। भयानक जानलेवा बलात्कार की घटनाओं की ही इतनी ज्यादा बढ़त हो गई है कि उसी के प्रभाव से निकलना मुश्किल हो रहा है। यहाँ बहुत अवकाश नहीं है फिर भी इतना तो कहना ही होगा कि विकास के गलत रास्ते पर हम चल पड़े हैं इस रास्ते की जाँच की जानी चाहिए। यह समझना भोलापन है कि विकास के गलत रास्ते से इसका कोई संबंध नहीं हैं। जारी विकास के चरित्र को समझे बिना बात साफ नहीं हो सकती है। जारी विकास के चरित्र को समझे बिना न तो असहिष्णुता, हिंसा, शोषण, अपराध, क्रूरता और पर-पीड़कता के प्रसार को समझा जा सकता है और न ही महिलाओं पर स्त्री होने के कारण शारीरिक और मानसिक अत्याचार और अनाचार की भारी बढ़त और उस पर होनेवाली विभिन्न प्रतिक्रियाओं को ही समझा जा सकता है।

उस रात दिल्ली में जो हुआ वह बहुत ही भयानक था। देश की राजधानी में इस तरह की घटना और उसकी ऐसी भयावह परिणति बहुत ही परेशान करनेवाली थी। घटना के तुरत बाद सामने दिखे नागरिक रवैया, प्रशासनिक रवैया खतरनाक सामाजिक संकेतों से भरा हुआ है। मीडिया की भूमिका धीरे-धीरे गहराती हुई तूफान में बदल गई। नागरिकों का रवैया भी तीखा होता गया। प्रशासन पर भी भारी दबाव पड़ने लगा और उसकी तत्परता में वृद्धि हुई। पूरा माहौल क्रोध और उत्तेजना से भरा हुआ था। क्रोध और उत्तेजना उस समय स्वाभाविक ही था, लेकिन क्रोध और उत्तेजना की मनःस्थिति में विचार के संतुलन को बनाये रखना संभव नहीं होता है। हर कोई कुछ-न-कुछ कह रहा था, माध्यम उसका चाहे जैसा और जो हो। कोई चैनल पर अपनी प्रतिक्रिया दे रहा था, कोई दोस्तों में इस पर बात कर रहा था, कोई परिवार में चर्चा कर रहा था। फेसबुक और सोसल मीडिया पर लोगों की अपनी सक्रियता तो थी ही। चुप कोई नहीं था। निंदा और भर्त्सना सभी प्रतिक्रियाओं में सामान्य थी। दोषारोपण की भी प्रवृत्ति चरम पर थी। उस दौर को याद करना एक त्रासद अनुभव से गुजरना है। अब ठहर कर इस तरह की बढ़ती हुई घटनाओं पर गंभीरता से सोचने की जरूरत है। सोचने की जरूरत है कि इस खतरनाक प्रवृत्ति पर रोक कैसे लगे। सोचना यह है कि नागरिक सुरक्षा और महिलाओं की सामाजिक स्थिति कैसे निरापद बने। सोचना यह है कि इसमें प्रशासन की भूमिका को कैसे अधिक प्रभावी बनाया जाये। सोचना यह है कि कैसे कानूनी प्रावधानों में सुधार लाया जाये। सोचना यह भी जरूरी है कि नागरिकों की सामाजिक भूमिका को कारगर, प्रभावी और प्रशासनिक परेशानी से कैसे मुक्त किया जाये। सोचने के इस क्रम में सबसे पहले जरूरी इस बात को ध्यान में रखना होगा कि असहमतियों के लिए न सिर्फ गुंजाइश हो बल्कि न्यूनतम सम्मान भी हो और जाहिर है कि असहमतों की नीयत पर शंका या चोट करने से आयासपूर्वक बचा जाये।

इधर, हिंदी के नामी लेखकों के एक अंश में इस बात पर रोष है कि घटना के प्रतिवाद में लेखक संगठनों की कोई प्रभावी भूमिका नहीं रही। जिनके मन में सबसे ज्यादा रोष है वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं और जितनी अच्छी तरह से जानते हैं उससे भी अधिक दृढ़तापूर्वक मानते हैं कि लेखक संगठनों की ही कोई प्रभावी उपस्थिति नहीं है समाज में। इस पर अधिक कहना जरूरी नहीं है, जरूरी यह याद दिलाना कि जब राजनीतिक आपातकाल के लागू किये जाने के प्रतिवाद में ही लेखक संगठन की कोई भूमिका नहीं सामने आई थी उसी समय इस पड़ताल की जरूरत थी कि सामाजिक मामलों में, और कदाचित राजनीतिक मामलों में भी, लेखक संगठनों से हम क्या उम्मीद रखते हैं और समाज क्या उम्मीद रखता है। समाज, हिंदी समाज, अपने लेखकों को कितना और किस रूप में पहचानता है। असल में लेखकों या लेखक संगठनों के प्रति यह रोष समाज में नहीं है, और ठोस रूप से कहें तो पाठक समाज में नहीं है कि उसके लेखक या लेखक संगठन क्यों नहीं प्रभावी भूमिका में आ सके। यह रोष लेखकों के तथाकथित समाज के एक अंश में है और जाने-अनजाने इसका कुत्सित

इस्तेमाल हो रहा है। मुझे नहीं मालूम कि हिंदी लेखकों के अलावे और किस भाषा के लेखकों में इस तरह की चर्चा है या रोष है या इस मामले में उनकी क्या भूमिका रही है। असल में इस घटना के प्रतिवाद में जो शक्ति सामने आई वह अपने-आप में अपेक्षाकृत असंगठित थी। इस प्रतिवाद की ताकत और इसकी गतिमयता असंगठित होने में ही थी। कोई भी संगठित प्रयास इसके बेमेल में होता और जिसका सकारात्मक रूप से प्रभावी होना मुश्किल था। लेख भी नागरिक होता है और अपने नागरिक समाज का हिस्सा होता है। इस रूप में अपनी छोटी-बड़ी भूमिका वह अदा करता है और इसे समझने में उसका नागरिक समाज सक्षम होता है, भले ही बड़े तथा अभिभावक सरीखे लेखक अपने साधारण लेखकों की भागीदारी को पहचानने या भागीदारी कर रहे लेखकों को लेखक मानने में उतने सक्षम न हों। इस बात को स्वीकारना चाहिए।

समाचार चैनलों पर और सोशल मीडिया में इस मामले पर चर्चा हुई। इस चर्चा में कई गौर करनेवाली बात सामने आई। उनकी थोड़ी-सी चर्चा यहाँ अ-प्रासंगिक नहीं है। ध्यान रहे जब हम किसी के बारे में कुछ कह रहे होते हैं तो अपने बारे में भी जाने-अनजाने बहुत कुछ प्रकट कर रहे होते हैं। बहरहाल, चर्चा का एक स्वर यह था कि इस घटना पर जो नागरिक प्रतिक्रिया हुई वह जरूरत से ज्यादा थी। इस लिहाज से ज्यादा थी कि इस तरह की और इससे भी भयावह घटनाएं देश के अन्य भाग में होती रहती है इस पर दिल्ली का नागरिक समाज और दिल्ली केंद्रित मीडिया इस तरह से सक्रिय नहीं होता है। कई उदाहरण भी दिये गये। बचाव में, जिम्मेवार लोगों ने यह भी कहा कि दिल्ली में हुई घटना और घटना के प्रतिवाद की तीक्ष्णता का अधिक होना स्वाभाविक है। यहाँ एक खतरनाक संकेत छिपा हुआ है। पहला संकेत तो यह कि हमारा नागरिक समाज एक नहीं है। दिल्ली का नागरिक समाज, मुंबई का नागरिक समाज, कोलकाता, चेन्नेई आदि के न सिर्फ नागरिक समाज अलग-अलग हैं, बल्कि इन नागरिक समाजों की हैसियत भी अलग-अलग है; मणिपुर, मेघालय जैसे राज्यों, मोतिहारी, बेतिया जैसे कस्बाई शहरों या बेलछी, पारसबीघा जैसे गाँवों की भी हैसियत अलग-अलग है। कहना न होगा कि यह हैसियत राष्ट्रीय और प्रांतीय राजधानियों से उनकी निकटता से तय होती है। राष्ट्रीय राजमार्गों या मुख्य रेलपथ के किनारे रहनेवाले नागरिक समाजों की भी थोड़ी-बहुत हैसियत होती है क्योंकि वे कुछ-न-कुछ अवरुद्ध करने की नकारात्मक स्थिति में होते हैं। जो इन सबसे बहुत दूर-दराज इलाके में हैं और कुछ-न-कुछ अवरुद्धकर सरकारों की नींद उड़ाने की वैसी स्थिति में नहीं होते हैं उनके प्रतिवाद और रोष की तीक्ष्णता भी उनकी उसी स्थिति से तय होती है। कहने में अच्छा नहीं लग रहा है, सुनने में भी अच्छा नहीं लगेगा लेकिन इस सच्चाई को छुपाना भी तो आसान नहीं कि जहाँ जितने के माल की खपत होती है, वहाँ से उसी अनुपात में टीआरपी भी आती है, उसी अनुपात में राजस्व भी आता है। नागरिकों और नागरिक समाजों की हैसियत उनके उपभोक्ता

होने के अनुपात से तय होती है। हमारी राष्ट्रीय और राज्य सरकारें, हमारी मीडिया, उन नागरिक समाजों की हैसियत के आधार पर ही उनके नागरिक जीवन में होनेवाली अ-प्रीतिकर घटनाओं की तीक्ष्णता को महसूस करती है, न सिर्फ महसूस करती है बल्कि इस तरह से महसूस करने को उचित भी मानती है। बहुत भयावह है सोचना इस तरह कि देश-व्यापी जन-राष्ट्र बनने की ओर बढ़ने के बदले हम लगातार राजधानी शहर केंद्रित उपभोक्ता राष्ट्र बनने के आत्मघाती-संकोचन की ओर तेजी से बढ़ रहे हैँ। न सिर्फ बढ़ रहे हैं, बल्कि इस तरफ बढ़ने के औचित्य संस्थापन के बौद्धिक छल के भी शिकार हो रहे हैं।

कहीं-कहीं से दिल्ली में इस दुर्घटना कि शिकार हुई युवती को शहीद बताने की बात भी सुनाई पड़ी। शिकार युवती के प्रति पूरी संवेदना रखते हुए भी शिकार और शहीद के अंतर को भुलाया नहीं जाना चाहिए। सच्चाई क्या है मुझे नहीं मालूम, लेकिन बात उस युवती की जाति को लेकर भी चलाने की कोशिश की गई। उसकी जाति के हवाले से इस घटना पर होनेवाली प्रतिक्रियाओं के चरित्र को भी समझने-समझाने की कोशिश हुई। पहला मंतव्य यह कि उस जाति की थी फिर भी नागरिक समाज जाति-विचार किये बिना इतने जोरदार तरीके से सक्रिय हुआ तो दूसरा मंतव्य यह कि मुझे पहले से ही संदेह था कि वह उस जाति की है इसलिए नागरिक समाज इतना सक्रिय है। संकेत यह कि भारत जन-राष्ट्र के सपने के औचित्य के बाहर समुदायिक राष्ट्र में विघटित होने के आत्मघाती रास्ते पर बढ़ रहा है। शोर में एक स्वर यह भी उभरा कि यह जघन्य काम बिहारियों ने किया। हो सकता है जिसने यह जघन्य काम किया वह बिहारी हो, लेकिन यह कहना भयानक है कि यह काम बिहारियों ने किया। यह सच है कि अयोध्या में ढाँचे को ढहानेवाले हिंदु थे, लेकिन यह कहना गलत है कि हिंदुओं ने अयोध्या में ढाँचे को ढहाया। इस तरह की बात करनेवाले बढ़ रहे हैं। यह क्षेत्रीय बहिष्करण को उकसाकर अपना उल्लू सीधा करने का मामला है। इन्हें रोकनेवाला कोई नहीं है। ऐसी बातों की उपेक्षा की भारी कीमत भारत के जन-राष्ट्र बनने के सपने को चुकानी पड़ सकती है। कुछ प्रतिक्रिया ऐसी भी आई जिससे यह लगा कि नागरिक समाज के नाम पर न्याय करने का अधिकार भीड़ के पास है। उसे ही न्याय करने दिया जाये अर्थात नागरिक समाज को अपनी न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत न्याय होने के प्रति कम ही भरोसा है। मामला अदालत में है इस पर अधिक कुछ कहना अबांछनीय है फिर भी इस तथ्य पर सोचने से इनकार नहीं किया सकता है कि भारी दबाव के कारण अभियुक्त को लग रहा है कि दिल्ली में होनेवाली सुनवाई में उसके साथ न्याय होने की संभावना कम है। कैसी विकट स्थिति है कि वादी-प्रतिवादी में से किसी को भी अपनी न्यायिक प्रक्रिया पर पूरी और अ-टूट आस्था नहीं है। फिलहाल तो इतना ही कि इस घटना पर होनेवाली इस तरह की प्रतिक्रियाओं की मानसिकता को पढ़े जाने की जरूरत है। यह इसलिए कि शहर

केंद्रित उपभोक्ता राष्ट्र होने का आत्मघाती-संकोचन और समुदायिक राष्ट्र होने का आत्मघाती विघटन एक ही प्रक्रिया की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं, जिसे क्षेत्रीय बहिष्करण की मानसिकता से बल मिलता है जो अंततः जनतंत्र को भीड़-तंत्र में बदल दिये जाने की वैधता की तलाश में है। यह अति-कथन या अग्र-कथन नहीं है, हाँ इस प्रक्रिया के परिणाम की गंभीरता और भयावहता का आकलन एक कठिन काम है।

इस तरह की भयावह घटनाओं को रोकने के लिए संवैधानिक, प्रशासनिक, पारिवारिक, शैक्षणिक और सामाजिक स्तर पर सारे प्रयास किये जाने की तात्कालिक जरूरत को पूरा करने के लिए जोरदार कदम उठाया जाना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी है इसके दीर्घकालिक समाधान के लिए इसके अंतर्निहित कारकों को पहचाना और समझा जाये। विकास के चरित्र की असंगतियों को पहचान कर उसे दुरुस्त किया जाये। नव-नैतिकता का ऐसा परिसर तैयार किया जाये जिसमें बलात्कार जैसी घटनाओं की शिकार महिला की छवि सिर झुकाये, लुटी-पिटी, सर्वस्व खो चुकी, स्वत्वहीन और सत्वहीन बहिष्कृता की न होकर सामान्य मनुष्य जैसी होने की भरपूर गुंजाइश हो। नव-नैतिकता का सर्वथा अपना परिसर इस तरह से तैयार किया जाये जिसमें शरीर पर किये गये आघात से आत्मा के घायल होने की स्थिति से बचाव की पूरी गुंजाइश हो। एक नई नैतिक दृष्टि का अपनाव इस समय की सबसे बड़ी जरूरत है। यह मुश्किल तो है, मगर असंभव नहीं। इसके लिए चाहिए साहस। यकीनन, समाधान है साहस।